❑ डा0 कृष्ण बिहारी मिश्र

हिन्दी पत्रकारिता : विरासत की रोशनी और साम्प्रतिक दशा

विज्ञप्त तथ्य है कि जातीय अभीप्सा की गतिमान ऊष्मा ने पत्रकारिता के चरित्र को प्राण-पुष्ट बनाया। विरासत की उज्ज्वल साधना याद आती है कि साम्राज्यशाहीतोप के प्रतिरोध में क्रियाशील और जयी भारतीय पत्रकारिता ने अपने समय की चुनौती का पूरी शक्तिमत्ता से मुकाबला किया था। आदि पर्व के पत्रकारों की साधना का एकांत लक्ष्य था साम्राज्यशाही अभिशाप से मुक्ति। इसके लिए बड़ी से बड़ी यातना झेलने को वे प्रस्तुत रहते थे। और जब-तब विकट आतंक रचने वाली परिस्थिति तथा बड़े से बड़े प्रलोभन उन्हें आदर्शच्युत करने में विफल रहे। मांडले जेल की यातना झेलने वाले तिलक और अपनी गृहस्थी को जीवित रखने के लिए स्तरहीन परिस्थिति से आहत होने वाले पं0 अमृतलाल चक्रवर्ती की आस्था-निष्ठा शेष तक अक्षत रही। लोकमान्य तिलक के पूर्ववर्ती, उनके समकालीन समानधर्मा और उनकी आदर्श-सरणि से यात्रा करने वाली परवर्ती पत्रकार-पीढ़ी ने निजी स्वार्थ को ताक पर रखकर अपनी प्रातिभ शक्ति और जीवन-चर्चा को देश के मुक्ति-संग्राम में नियोजित कर दिया था। पत्रकारिता की अतीत पीढ़ी के कृती पुरुषों को यह बोध था कि पंत्रकार की भूमिका लोकनायक की भूमिका होती है। इसी विवेक और गुरुतर भूमिका से समृद्ध है पत्रकारिता की विरासत।

आजादी के बाद के जातीय परिदृश्य को देखकर सहज ही धारणा बनती है कि साधना-संघर्ष का काल शेष हो गया और हर क्षेत्र में क्रियाशील भोग की उद्धत लीला ही आज की संस्कृति है। मूल्य-निष्ठा और अनुशासन-आग्रह को अप्रासंगिक पुरा राग मानकर अपना भाग्य जगाने के लिए उसके विपरीत पथ से यात्रा करना आज का चालू कौशल है, जिसकी सिद्धि ही सिद्ध होने का प्रमाण समझी जा रही है। अनुशासनहीनता का अंधड़ और विलासप्रियता की सनकी स्पर्द्धा दिन-दिन समृद्ध होती जा रही है। पत्रकारिता के चेहरे-चरित्र में आजादी के बाद के पिछले दशकों में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। पूंजी का वर्चस्व पुष्ट हुआ है। साधना-सुविधा में अभूतपूर्व समृद्धि आई है। अपने पद की गुरुता-महत्ता से उदासीन आज का पत्रकार 'देश के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य' मानने और अपनी विरासत के उज्ज्वल अध्याय को अपना आदर्श बनाने को तैयार नहीं है। समाज के दूसरे वर्ग के लोगों की तरह वह निजी समृद्धि और विलास - वैभव में जीने की आकुल स्पृहा से आन्दोलित होकर रंगीन राहों - घाटों पर दौड़ता नजर आ रहा है। पत्रकारिता की विकसित सुविधाओं और अनुकूल साधनों का विधायक दिशा में यदि नियोजन नहीं हो रहा है और पीड़क यथार्थ है कि समाज-संस्कार की सजातीय और विशिष्ट भूमिका से साम्प्रतिक पत्रकारिता काफी हद तक विरत हो चुकी है, तो यह धारणा पुष्ट होती है कि पत्रकार के व्यक्तित्व में स्खलन आया है और पत्रकारिता का धवल धरातल बड़ी तेजी से प्रदूषित हो रहा है। वर्तमान ढाही के लक्षणों को लक्ष्य कर मूल्य-भित्तिक पत्रकारिता के पुराने पुरस्कर्ता आसन्न अंधकार के प्रति चिंतित थे। बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी और शिवपूजन सहाय ने पत्रकार-कुल की धवलता का बार-बार तीव्र आग्रह प्रकट किया था। मगर पूंजी के प्रताप ने पत्रकारिता की मूल्य - मर्यादा को बुरी तरह क्षत कर दिया। व्यवसायवाद ही एकमात्र आदर्श बन गया। स्खलन को नये मुहावरों से महिमान्वित करते गर्वपूर्वक कहा जाने लगा है कि पत्रकारिता आज व्यवसाय है, आदर्श का सवाल उठाना अप्रासंगिक राग टेरना है। आत्मश्लाघा के साथ ऐसी घोषणा करने वाले निरापद जिन्दगी के कायल, आज के सुविधाजीवी लोग यह भूल जाते हैं कि हर व्यवसाय की स्वतंत्र प्रकृति और आचार-संहिता होती है। अन्य व्यवसायों से भिन्न प्रकृति होती है पत्रकारिता की। इस भिन्नता में ही उसकी विशिष्टता और महत्ता है। मगर समाज के अर्थ-सम्पन्न लोगों की तरह उपभोक्ता संस्कृति को ही अपने विलासोन्मुख आचरण द्वारा अपना धर्म मानने वाले आज के पत्रकार वृत्ति-विशिष्टता के बोध और उससे जुड़े गुरुतर दायित्व से उदासीन हो गये हैं। परिणामतः व्यावसायिक, राजनीतिक प्रलोभनों की रंगीन माया में भटकना और अपनी विपथगामी यात्रा से अपने कुलगोत्र के प्रति अन्यथा धारणा को जन्म देना उनकी लाचारी बन गयी है।

चिन्ताशील जगत् को यह स्थिति उन्मथित करती रहती है कि जो भाषा सामाजिक-राजनीतिक कुकर्म पर बेलाग टिप्पणी करती थी, पत्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की जो भूमिका मूल्यों के संरक्षण का आश्वासन जगाती थी, वह आज के राजनीतिकों के आचरण की तरह संदिग्ध हो गयी है। भाषा की विश्वसनीयता का टूट जाना सांस्कृतिक संकट का संकेत है।

पत्रकारिता राजनीतिकों के मुहावरे की प्रतिध्वनि जान पड़ने लगी है। पुराने पत्रकार अपने विवेक और समृद्ध व्यक्तित्व से राजनीति का दिशा-निर्देश करते थे, राजसत्ता के प्रतिपक्ष की भूमिका में अग्रणी थे। वे साम्राज्यशाही नृशंसता का जिस दृढ़ता और युयुत्सु मुद्रा में मुकाबला करते थे, उसी जागरुकता से, औचित्य के आग्रह से, स्वदेशी राजनेताओं की च्युति पर टिप्पणी करते उन्हें संकोच नहीं होता था। महात्मा गांधी जैसे लोकनायक पर बाबूराव विष्णु पराड़कर ने कड़ी टिप्पणी की थी। आज के पत्रकार राजनीति और राजसत्ता का आनुकूल्य उपलब्ध करने के लिए उनके मुहावरे में बोलने लगे हैं। उपभोक्ता संस्कृति के अभिशाप को लक्ष्य कर राजनेताओं की तरह आवाज टेरने वाले पत्रकार स्वयं व्यावसायिक चाकचिक्य के प्रति सतृष्ण हो गये हैं और उपभोक्ता संस्कृति ही इनकी संस्कृति बनती जा रही है। पत्रकार बुद्धिजीवी - वर्ग की उस सरणि के यात्री हैं, समाज के लिए जिसकी भूमिका प्रत्यक्ष - प्रभावी होती है। इसलिए इस पथ के यात्री के लिये अपेक्षाकृत अधिक जागरुकता की जरूरत होती है। किंचित अनवधानता लोक के अमंगल का कारण बन सकती है। वृन्दावन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित प्रथम पत्रकार सम्मेलन के अध्यक्ष बाबूराव विष्णुपराड़कर ने पत्रकार - कुल को संबोधित करते हुए कहा था, ''पत्र बेचने के लोभ में अश्लील समाचार को महत्व देकर तथा दुराचरणमूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णन कर हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे हैं, इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए। अपराधी एकाध पर अत्याचार करके दण्ड पाता है और हम सारे समाज की रुचि बिगाड़कर आदर पाना चाहते हैं।''

साम्प्रतिक पत्रकारिता की भाषा-मुद्रा लोक-हितैषी भूमिका नहीं मानी जा सकती। समाज का भाषा - संस्कार पत्रकारिता का महत्वपूर्ण प्रयोजन है, जिसके प्रति हिन्दी की पुरानी पत्रकार - पीढ़ी सचेत थी। हिन्दी के आदि पत्रकार पं0 जुगलकिशोर शुक्ल तक में भाषा शुद्धता का आग्रह और संकरता— सजगता थी। परवर्तीकाल में भाषा-धरातल की धवलता के प्रश्न को लेकर पत्रकारों ने इतिहास प्रसिद्ध विवाद की सृष्टि की थी, जिसकी विधायक उपलब्धि थी भाषा समृद्धि। आज अपने व्यवसाय के लिए लोक का विविध रूपों में उपयोग करने वाले पत्रकार भाषा विषयक अपने गुरुतर दायित्व को कदाचित समझ नहीं रहे हैं और इसे अपेक्षित गुरुता देने को तैयार नहीं हैं। भाषा के अविकसित रूप और भदेश-भंगिमा को संस्कृत करने की ओर प्रवृत्त न होकर लोकप्रियता का कायल पत्रकार पत्रकारिता की परिनिष्ठित भाषा - मुद्रा को जागरूक आयास द्वारा संकरता की उस पटरी से चलाने लगा है जो भाषा-संस्कार को चिढ़ाती है तथा कथित जनवाद का कदाचित् यह भी एक प्रयोजन है और भाषा की अधोगामी यात्रा क्षिप्रतर होती जा रही है, जो पत्रकारों के दायित्व से जुड़ा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।

ऐतिहासिक तथ्य है कि पुराने पत्रकार अनेकमुखी प्रतिकूलता के बावजूद अपनी निष्ठा से अपने समय की चुनौती का सामना करते थे। जिस समाज को वे संबोधित कर रहे थे वह उनकी लड़ाई में सहयात्री बनने को तैयार नहीं था। उस समाज का राजनीतिक संस्कार अविकसित था। अज्ञान की कठोर जमीन से उनकी आस्था की लड़ाई थी। मगर वे उस ऊंचे जातीय आदर्श से प्रेरणा-स्फूर्त थे कि ''राजनीति और समाजनीति का संशोधन जैसा समाचार पत्रों से होता है, वैसा दूसरे उपाय से नहीं हो सकता।'' देश-प्रीति की इस प्रेरणा से उन्होंने पत्रकारिता की विकट-राह को अपनी यात्रा के लिये चुना था। आज स्थिति पूरी तरह बदल गयी है। पत्रकारिता की विकसित सुविधाओं के आकर्षण से इस विधा से, निरापद और विलासपूर्ण जीवन के आकांक्षी जुड़ रहे हैं। इसलिए स्वाभाविक रूप में अपने धर्म की बुनियादी आचार-संहिता का भी उन्हें ध्यान नहीं रहता। विलास की अमर्यादित भूख और व्यवसायवाद की प्रभुता के सामने निष्ठा की रक्षा कर पाना बड़ी चुनौती है। आज इस चुनौती का सही कोण से सामना करने वाले पत्रकार विरल हैं। परिणामतः पत्रकारिता की स्वकीय सत्ता दिन-दिन निष्प्रतिभ हो रही है। तकनीकी साधन-समृद्धि लोक-मंगल का निमित्त बनकर ही सार्थक हो सकती है, इस समझ का तिरस्कार कर चलने वाले आज के अधिकतर पत्रकार व्यवसाय-प्रभुता के सामने नमित हो गये हैं। कृती साहित्यकार अज्ञेय, भारती, रघुबीरसहाय और मनोहर श्याम जोशी ने पूंजीपति-प्रतिष्ठान के समृद्ध साधन का विधायक उपयोग कर अपने जागरूक विवेक तथा दक्षता का प्रमाण दिया था। उनमें सम्पादक की गरिमा-रक्षा की अपेक्षित सजगता और कौशल था। 'भारत' से सम्बद्ध श्री हेरम्ब मिश्र और 'नई दुनिया' तथा 'नव भारत टाइम्स' से जुड़े स्व0 राजेन्द्र माथुर की प्रखर भूमिका, आश्वासन के क्षीण आधार के रूप में, स्मरणीय है।

और स्मरणीय है पीड़क तथ्य वर्तमान इतिहास का कि सत्ता पर बैठी स्वदेशी राजनीति ने बुद्धिजीवियों के सामने 'आपातकाल' के रूप में चुनौती खड़ी की थी, जो आजाद देश की पत्रकारिता के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी, तो बड़े-बड़े और नामवर लोगों की गुमानी मुद्रा म्लान पड़ गई थी। कुछेक अपवाद रहे हैं, पर सामान्य स्थिति यही रही है कि चुनौती का हर अवसर उनकी लोकहित-विवर्जित भूमिका और चारित्रिक दौर्बल्य को बेनकाब करता रहा है। पत्रकारों को कृती भूमिका का आमंत्रण देने वाली स्वाधीन भारत की ऐतिहासिक घटना थी, स्वदेशी सरकार के कुशासन स्वेच्छाचारिता और दाम्भिकता के प्रतिरोध में सक्रिय जयप्रकाश नारायण का आंदोलन। उस आंदोलनके पक्ष-समर्थन में क्रियाशील इण्डियन एक्सप्रेस प्रतिष्ठान की भूमिका आजाद देश की स्मरणीय युयुत्सु भूमिका थी। कुछेक लघुपत्रिका के उद्योक्ताओं के प्रखर स्वर ने पराड़कर जी की 'रणभेरी' जैसी पत्रिकाओं की युयुत्सा-मुद्रा की याद ताजा कर दी थी। हिन्दी पत्रकारिता की जन्मभूमि कलकत्ता से प्रकाशित 'चौरंगी वार्ता' और उसके उद्योक्ता डॉ. राजेन्द्र सिंह तथा अशोक सेकसरिया की भूमिका जातीय निष्ठा और चारित्र्य-प्रेरित भूमिका थी। दूसरे प्रदेशों और दूसरी भाषाओं में जातीय उद्वेलन के उस अंधकार काल में समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की चुनौती का सामना करने वाले उल्लेखनीय आयोजन हुए थे। बांग्ला में श्री गौर किशोर घोष की भूमिका स्वदेशी आंदोलन काल के पत्रकारों की उदग्र मुद्रा की याद ताजा करने वाली भूमिका थी।

नि:संदेह स्वाधीन देश की पत्रकारिता ने सामान्यजन को राजनीतिक गतिविधियों के प्रति, राजनीतिक अपराधों के प्रति सुमुख - सचेत बनाया है। लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था के साथ ही पत्रकारिता ने लोगों को अमर्यादित रूप से अधिकार सजग बना दिया है और उसी परिमाण में संवेदना और संस्कृति बोध क्षत हुआ है। पत्रकारिता की साहित्यिक-सांस्कृतिक भूमिका बेहद कमजोर हुई है। राजनीति के वर्चस्व का यह एक शोचनीय दुष्परिणाम है। 'कल्पना' के बन्द होने के बाद हिन्दी में आज वैसी एक भी साहित्यिक पत्रिका नहीं है, जिसे हिन्दी के विवेक और प्रतिभा का सही प्रस्तुति-माध्यम कहा जा सके। 'कृति' 'कखग' और 'युगचेतना' अपने समय की स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाएं थीं, जिनकी यात्रा बहुत छोटी थी। 'नयाप्रतीक' को वात्स्यायनजी 'प्रतीक' नहीं बना पाये। पं0 विद्यानिवास मिश्र की 'अभिरुचि' की यात्रा कुछ अंक के बाद ही अवरुद्ध हो गयी। 'आलोचना' की तरह ये भी प्रकाशन-प्रतिष्ठान की पत्रिकाएं थीं। इलाहाबाद से बालकृष्ण राव के सम्पादन में प्रकाशित 'माध्यम' का स्तर और रूप-विन्यास पुरानी पत्रिकाओं और 'कल्पना' जैसा ही समृद्ध था, लेकिन सामान्य परिदृश्य को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि विजातीय आदर्श से प्रेरित और शिविर - विशेष से अनुशासित लघु पत्रिका - आंदोलन वह भूमिका पूरी नहीं कर सका, जिसकी सहज अपेक्षा थी और जिसे आजादी के पूर्ववर्ती साहित्यिक उद्योताओं के आयोजन ने पूरा किया था। स्मरणीय है, लघु पत्रिका ही थी हिन्दी की प्रथम पत्रिका 'उदन्त मार्तण्ड' और परवर्ती काल की 'उचितवक्ता' और 'नृसिंह' जैसी राजनीतिक पत्रिकाएं तथा 'मतवाला' एवं 'हंस' जैसी असंख्य साहित्यिक पत्रिकाएं।

पराधीनता काल के दैनिक पत्रों की भी साहित्यिक भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस दृष्टि से काशी के 'आज' और इलाहाबाद के 'भारत' की भूमिका अग्रणी थी। आज व्यावसायिक घराने के दैनिक पत्रों के रविवासरीय अंक में साहित्य - सामग्री के लिए अलग पृष्ठ जरूर रहता है, जो उनका धन पक्ष है, लेकिन विचार घोषणा देने वाली सामग्री यदाकदा ही दीख पड़ती है। साहित्य और विचार सामग्री छापने वाले पत्रों में 'नव भारत टाइम्स' और दिल्ली का 'जनसत्ता' अग्रणी रहे हैं। इस दृष्टि से जयपुर, काशी और इन्दौर के दैनिक पत्र तथा रांची से श्री हरिवंश के सम्पादन में निकलने वाले 'प्रभात खबर' की साहित्य-सुमुखता उल्लेखनीय है। संवेदना-विकास की जैसी उत्कट आकांक्षा पुराने पत्रकारों में थी वैसी आज होती तो दैनिक पत्र से भी साहित्य-संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रयोजन एक अंश तक पूरा हो सकता था। 'जनसत्ता'-सम्पादक श्री प्रभाष जोशी के साहित्य-कला पर केन्द्रित निबन्ध, दैनिक 'प्रभात खबर' की सम्पादकीय टिप्पणियों के उपजीव्य और सांस्कृतिक संवेदना, अपराध बोझिल युग - प्रवाह के बीच, किंचित् आश्वास-बोध जगाती है कि साहित्य-संस्कृति से पत्रकारों का सरोकार अभी पूरी तरह मरा नहीं है।

सम्प्रति डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का 'दस्तावेज' और 'अक्षरा' विशिष्ट साहित्यिक लघु पत्रिकाएं हैं, जो सम्पादक की शिविर मुक्त दृष्टि, सम्पादन-दक्षता एवं बलवती निष्ठा के आधार पर, क्षीण रूप में ही सही, आश्वस्त करती हैं। 'आलोचना', 'अभिरुचि', 'माध्यम' और 'नया प्रतीक' से भिन्न 'कखग' की तरह नितांत निजी उद्योग से निकलने वाली पत्रिका 'दस्तावेज' अपनी भूमिका से सम्पादक-उदार-दृष्टि का परिचय देती है। शिविरवाद के इस अंधे युग में यही विधायक दृष्टि है और यही काम्य है।

स्मरणीय है कि देश की अस्मिता-उद्धार की सहज चिन्ता से राजनीति से जुड़ना जब गर्व का विषय माना जाता था, तब भी मूल्यों के पक्षधर पत्रकार साहित्य-संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता-महत्ता से परिचित थे, उस धरातल को अक्षत और पुष्ट रखने के लिए सजग-सक्रिय रहते थे। पत्रकारिता के उस महत्वपूर्ण आयाम को साम्प्रतिक सम्पादक-पत्रकार अधिक समृद्ध कर सकते थे।

किन्तु हीन-साध साधन-आनुकूल्य का भरपूर लाभ नहीं उठा पाती। संदर्भ-विशेष में अज्ञेय ने सटीक टिप्पणी की थी, 'मूलत: समस्या वही है : एक स्वाधीन व्यक्तित्व का निर्माण, विकास और रक्षण।' व्यक्तित्व-बल के अभाव में ही लघु पत्रिका आंदोलन, मुखर दावा-दर्प के बावजूद, वह प्रभाव नहीं जगा सका जो पूर्ववर्ती उद्योक्ताओं की निष्ठा ने पैदा किया था और जिसे इतिहास गर्वपूर्वक रेखांकित करता है। कई लघु पत्रिकाओं ने विकल्प-मंच का संभावना-संकेत दिया था, किन्तु संभावना कायदे से रूपायित नहीं हो सकी। न केवल हिन्दी बल्कि दुनिया की सारी भाषाओं में लघु पत्रिका की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। 'मूल में वे ही संपादक थे जिनसे धनी घृणा करते थे, शासक क्रुद्ध रहा करते थे और जो एक पैर जेल में' रखकर धर्मबुद्धि से पत्र-संपादन किया करते थे। उनके परिश्रम और कष्ट से पत्रों की उन्नति हुई, पर उनके वंश का लोप हो गया। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और शिविर-प्रतिबद्ध दुराग्रह ने लघु-पत्रिका-आंदोलन की अपेक्षित भूमिका को, जो उदीयमान पीढ़ी के लिए वरदान सिद्ध होती, कमजोर बना दिया। इस प्रकार पूंजी-प्रताप के कुप्रभाव और अनावश्यक राजनीतिक दबाव के प्रतिरोध का आश्वासन शिथिल हो गया।

पत्रकारिता की अधोगति को वर्तमान दुर्गत समाज का स्वाभाविक परिणाम मानते पक्ष-विशेष पर दोषारोपण करना कुछ जागरूक लोगों को भी गलत लगता है। मगर दुनिया का और आधुनिक भारत का इतिहास साक्षी है कि मानवीय संवेदना को क्षत करने वाले औद्धत्य का अपने व्यक्तित्व- बल से पत्रकारों-संपादकों तथा विद्याकुल के कृती-पुरुषों ने प्रखर प्रतिरोध किया था। स्वधर्म के सहज आग्रह से समाज के अधोमुखी प्रवाह पर उन्होंने बेलाग टिप्पणी कर अपने दायित्व-बोध का प्रमाण दिया था। समाज की अधोगति को युगधर्म मानकर साक्षी-गोपाल बने रहना या विलास-लीला का सहचर बन जाना विद्या-व्यक्तित्व के संदर्भ में लज्जास्पद है। यह कोरा आदर्श वचन नहीं हकीकत है कि विशिष्ट राह के यात्री की जिम्मेदारी गुरुतर होती है और स्वाभाविक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में औरों की अपेक्षा उसकी तपस्या बड़ी होती है। पत्रकार और दूसरे बुद्धिजीवी दूसरे वर्ग की भोग-संसक्त जीवन-चर्या को ही अपना आदर्श मान लें तो फिर मूल्यों की सुरक्षा का आश्वासन क्या रह जाएगा ? हर काल में बौद्धिक वर्ग की भूमिका प्रतिपक्ष की भूमिका रही है। इसी वर्ग ने अपने समय की चुनौती-वाहिनी का अपनी मनीषा और धवल चरित्र से मुकाबला किया है, सांस्कृतिक सुस्ती के काल में नये चैतन्य की रचना की है। इसी विशिष्ट भूमिका की आज अपेक्षा है। धवल-चरित्र ही समाज की अपेक्षा पूरी कर सकता है। और कृती-पुरुष आत्मावलोचन को विकास की अनिवार्य शर्त मानते हैं। अपनी प्रातिभ-साधना द्वारा हिन्दी पत्रकारिता को विशिष्ट धरातल पर प्रतिष्ठित करने वाले अज्ञेय ने गहरे ममत्व के साथ साम्प्रतिक पत्रकारिता-परिदृश्य पर आत्मावलोचन की शैली में विचार किया था। शुभ चिंता के आवेग में पीड़ित होकर अज्ञेय ने टिप्पणी की थी, जो पत्रकारिता के धर्म से जुड़े बन्धुओं के लिये ध्यातव्य है, ''हिन्दी पत्रकारिता के आरम्भ के युग में हमारे पत्रकारों की जो प्रतिष्ठा थी वह आज नहीं है। साधारण रूप से तो यह बात कही जा ही सकती है, अपवाद खोजने चलें तो भी यही पावेंगे कि आज का एक भी पत्रकार, सम्पादक वह सम्मान नहीं पाता जो कि पच्चास-पच्चहत्तर वर्ष पहले के अधिकतर पत्रकारों को प्राप्त था। आज के सम्पादक, पत्रकार अगर इस अंतर पर विचार करें तो स्वीकार करने को बाध्य होंगे कि वे न केवल कम सम्मान पाते हैं, बल्कि कम सम्मान के पात्र हैं या कदाचित् सम्मान के पात्र बिल्कुल नहीं हैं। जो पाते हैं वह पात्रता से नहीं, इतर कारणों से। अप्रतिष्ठा का प्रमुख कारण यह है कि उनके पास मानदंड नहीं है। यही हरिश्चन्द्र कालीन सम्पादक-पत्रकार या उतनी दूर न जावें तो महावीर प्रसाद द्विवेदी का समकालीन भी हम से अच्छा था। उनके पास मानदंड थे, नैतिक आधार थे और स्पष्ट नैतिक उद्देश्य भी। उनमें से कोई ऐसे भी थे जिनके विचारों को हम दकियानूसी कहते, तो भी उनका सम्मान करने को हम बाध्य होते थे, क्योंकि स्पष्ट नैतिक आधार पाकर वे उन पर अमल करते थे - वे चरित्रवान थे। आज विचार क्षेत्र में हम अग्रगामी भी कहला लें तो कर्म के नैतिक आधारों की अनुपस्थिति में निजी रूप से हम चरित्रहीन ही हैं और सम्मान के पात्र नहीं है।'' पत्रकार-कुल के प्रख्यात कृती पुरुष की तीखी टिप्पणी उद्धृत करने की मेरी लाचारी, आशा है, क्षम्य समझी जाएगी। पत्रकार के राष्ट्रीय दायित्व-बोध पर विचार करते 'प्रताप' सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी ने जो बात कही थी, आज के श्रीहीन संदर्भ में अनायास याद आती है। अपने समानधर्मा पत्रकारों को उनके गुरुतर जातीय दायित्व के प्रति सचेत करने सन् 1930 में गणेशशंकर विद्यार्थी ने लिखा था, ''पैसे का मोह और बल की तृष्णा भारतवर्ष के किसी भी नये पत्रकार को ऊंचे आचरण के पवित्र आदर्श से बहकने न दे।''

हिन्दी के समाचार पत्र भी उन्नति के राजमार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। मैं हृदय से चाहता हूं कि उनकी उन्नति उधर हो या न हो, किन्तु कम-से-कम आचरण के क्षेत्र में पीछे न हटें। मूल्यों के पक्षधर किसी भी जागरुक व्यक्ति की यह न्यूनतम अपेक्षा हो सकती है। इस अपेक्षा के प्रति सुमुख-सचेत होकर ही पत्रकार अपने दायित्व का निर्वाह कर सकते हैं, अपनी उज्ज्वल विरासत को समृद्धतर कर सकते हैं।

7-बी, हरिमोहन राय लेन, कलकत्ता - 700 015

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org